ARYAVART SHODH VIKASH PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBBIL04292
RNI REG. NO. UPBBIL/2014/66218 PP. NO.- 215-218
ISSN NO.-2347-2944
Vol.-8, No.-II, Issues-IX YEAR- Dec-2017

प्रातिशाख्यों में स्वर विचार तथा स्वरित भेद

डॉ0 विनीता सिंह
एसो0 प्रो0– संस्कृत विभाग, कन्या महाविद्यालय आर्य समाज भूड़, बरेली (उ0प्र0) भारत

वेद के अध्ययन में स्वर का विशेष महत्व है क्योकि वेद मन्त्रों के शुद्ध उच्चारण और अर्थज्ञान के लिए स्वरज्ञान अनिवार्य है। वैदिक ऋचाओं के शुद्ध उच्चारण के लिए उदात्त, अनुदात्त और स्वरित आदि स्वरों का ज्ञान होना आवश्यक है। स्वरों के उच्चारण में किंचित् भी त्रुटि हो जाने पर पद के अर्थ का अनर्थ होकर अनिष्ट की प्राप्ति होती है। अतः प्रातिशाख्यों में स्वरों का विशिष्ट विवेचन किया गया है। स्वरित स्वरों का विशेष विवेचन प्रातिशाख्यों में है। वैदिकी विशेष शाखा से सम्बन्धित प्रातिशाख्यों में उक्त विवेचना में भिन्नता दृष्टिगोचर होती है। इसका कारण यह है कि प्रत्येक वेद की अपनी भिन्न विशेषता है। अतः उनसे सम्बन्धित प्रातिशाख्यों में तत्सम्बन्धी स्वर निर्देश दिये गये हैं।

स्वर विचार– प्रातिशाख्य ग्रन्थों में स्वर शब्द का प्रयोग अ आदि तथा सन्ध्यक्षर आदि स्वर वर्णो के लिए हुआ है। ऋक् प्रातिशाख्य में– अ आ ऋ ॠ इ ई उ ऊ ए ओ ऐ औ– इन्हें स्वर कहा है (1)। वाजसनेयि प्रातिशाख्य में भी– अ, आ, आ3, इ, ई, ई3, उ, ऊ, ऊ3, ऋ ॠ ॠ3, ऌ, ॡ, ॡ3, ए, ए3, ऐ, ऐ3, ओ, औ3, औ, औ3 स्वरों को परिगणित किया गया है (2)। चतुरध्यायिका में 'स्वर' शब्द का प्रयोग अकारादि विशेष वर्णो के लिए किया गया है (3)। किन्तु कहीं भी स्वर संज्ञा का प्रयोग नहीं किया गया है। ऋक् तत्र में स्वर संज्ञा का विधान करते हुए चौदह वर्णो को स्वर कहा गया है– अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ऋ, ॠ, ऌ, ॡ, ए, ऐ, ओ, औ (4)। वर्णो की मतविभिन्नता के साथ शिक्षा ग्रन्थों तथा प्रातिशाख्यों में स्वर संख्या में भी विभिन्नता है।

स्वरों का स्वरूप– स्वरों के उदात्तादि वैदिक स्वरूप की विवेचना भी प्रातिशाख्य ग्रन्थों में की गई है।

उदात्त– 'ऋक् प्रातिशाख्य' में उदात्त अनुदात्त और स्वरित तीन स्वरों का उल्लेख करते हुए कहा गया है कि उच्चारण अवयवों के ऊर्ध्वगमन (आयाम), अधोगमन (विश्रम्भ) और तिर्यग्गमन (आक्षेप) से क्रमशः इनका उच्चारण होता है (5)। तैत्तिरीय प्रातिशाख्य में उदात्त का विधान करते हुए कहा है– "उच्चैरुदात्तः"। (6)। वाजसनेयि प्रातिशाख्य में भी यही परिभाषा उल्लिखित है (7)। 'चतुरध्यायिका' में उदात्त स्वर का विधान इस प्रकार किया है– "समानयमेऽक्षरमुच्चैरूदात्तम"। (8)। 'ऋक् तन्त्र' में उदात्त को 'उत्' संज्ञक कहा है। "उदात्तमुत्"। (9)। अथर्व प्रातिशाख्य में उदात्त का परिगणन बिना लक्षण के ही है। "आख्यातं नोदात्तं"। (10)।

अनुदात्त– ऋक् प्रातिशाख्य में कहा है कि उच्चारण अवयवों के अधोगमन (विश्रम्भ) से 'अनुदात्त' का उच्चारण होता है– "विश्रम्भो नामाधोगमनं गात्राणां– वायुनिमित्तं तेन य उच्यते स अनुदात्तः।" (11)।

तैत्तिरीय प्रातिशाख्य में कहा गया है कि निम्न ध्वनि से उच्चारित होने वाला अनुदात्त संज्ञक होता है। "नीचैरनुदात्तः।" (12)। वाजसनेयि प्रातिशाख्य तथा चतुरध्यायिका में अनुदात्त की परिभाषा तैत्तिरीय प्रातिशाख्य के अनुसार ही है (13)। अथर्व प्रातिशाख्य में अनुदात्त शब्द का ग्रहण बिना किसी परिभाषा के ही किया गया है– "व्याघ्रादीन्यनुदात्तानि पादादीनामपोदितम्।" (14)। तैत्तिरीय प्रातिशाख्य पर माहिषेय भाष्य में अनुदात्त को और विस्तृत करते हुए कहा है–

"अन्ववसर्गो मार्दवमुरूता खस्येति नीचैः कराणि नीच लक्षणैः यः स्वरः उच्चार्यते सोऽनुदात्तसंज्ञो भवति।" (15)।

तैत्तिरीय प्रातिशाख्य पर वैदिका भरण भाष्य में कहा है कि समान स्थान में ह्रदय के निकट अधोभाग में उत्पन्न प्रयत्न से उच्चार्यमाण स्वर 'अनुदात्त गुण से युक्त होने के कारण अनुदात्त संज्ञक होता है। उदात्त का विरोधी गुण अनुदात्त होता है।

"समाने स्थाने ह्रदयासन्ने अधोभागे जातेन प्रयत्नेन उच्चार्यमाणस्वरोऽनुदात्तगुणकत्वादनुदात्तसंज्ञो भवति। उदात्तविरूद्धगुणोऽनुदात्तः। (16)।"

स्वरित– ऋक् प्रातिशाख्य में स्वरित के विषय में कहा है कि उच्चारण अवयवों के तिर्यग्गमन (आक्षेप) से स्वरित का उच्चारण होता है (17)। इसी प्रातिशाख्य में स्वरित की निष्पत्ति इस प्रकार कही गई है कि पूर्व वाले दो 'उदात्त' और 'अनुदात्त' का एक अक्षर में समावेश होने पर 'स्वरित' स्वर निष्पन्न होता है (18)। "एकाक्षरसमावेशे पूर्वयोः स्वरितः स्वरः"।

तैत्तिरीय प्रातिशाख्य में उदात्त और अनुदात्त का समाहार होने पर स्वरित की निष्पत्ति कही गई है– "समाहार स्वरितः।" (19)। वाजसनेयि प्रातिशाख्य में कहा गया है कि दोनों गुणों अर्थात् उदात्त और अनुदात्त से युक्त स्वर की स्वरित

अनुरूपी लेखक

संज्ञा होती है। "उभयवान्त्स्वरितः।" (20) चतुरध्यायिका में कहा है कि 'आक्षेप' अर्थात् उच्च ध्वनि से निम्न ध्वनि की ओर जाने से निष्पन्न स्वर की स्वरित संज्ञा होती है। "आक्षिप्त स्वरितम्।" (21)। ऋक् तन्त्र में उदात्त को उत्संज्ञक कहकर स्वरित का लक्षण इस प्रकार किया है–"आद्यार्धमात्रा स्वरितम् (22)।"

स्वरित भेद– वेदों में प्राप्त स्वरित के विभिन्न भेदों को प्रातिशाख्यों में परिभाषित किया गया है। स्वरित के मुख्यतः तीन भेद हैं– उदात्त पूर्व, जात्य और संधिज। उदात्त पूर्व के पांच भेद हैं– वैवृत, तैरोव्यंजन, तैरोविराम, ताथाभाव्य, प्रातिहत। संधिज के तीन भेद हैं– क्षैप्र, प्रश्लिष्ट तथा अभिनिहित।

अ–उदात्तपूर्व स्वरित– उदात्त पूर्व के पांच भेद हैं– वैवृत, तैरोव्यंजन, तैरोविराम, ताथाभाव्य, प्रातिहत।

वैवृत– ऋक् प्रातिशाख्य में कहा है– उदात्त है पूर्व में जिसके वह 'अनुदात्त' अक्षर (नियत) विवृत्ति या व्यंजन से व्यवहित् (अन्तर्हित) हो जाने पर भी स्वरित हो जाता है यदि उस अनुदात्त अक्षर के बाद में उदात्त अथवा स्वरित न हो। "उदात्तपूर्व नियतं विवृत्या व्यंजनेन वा। स्वर्यतेऽन्तर्हितं न चेदुदात्तस्वरितोदयम्।।" (23)।

तैत्तिरीय प्रातिशाख्य में इसी 'वैवृत्त' को 'पाद विवृत्त' संज्ञा दी गई है। पदान्त और पदादि दो 'स्वर' वर्णो के मध्य में विद्यमान व्यवधान को 'विवृत्ति' कहते हैं। विवृत्ति (व्यवधान) होने पर भी पदान्त 'उदात्त' स्वर के प्रभाव से पदादि 'अनुदात्त' स्वर 'स्वरित' हो जाता है तो यह पादविवृत्त (दो पदों में होने वाली विवृत्ति) स्वरित है (24)। तैत्तिरीय प्रातिशाख्य का त्रिभाष्यरत्न भी यही स्वीकार करता है (25) किन्तु वैदिकाभरण भाष्य के मत में पद के मध्य में पद विवृत्ति होती है। पद के मध्य में विद्यमान 'विवृत्ति' में जो 'स्वरित' होता है वह पादवृत्त संज्ञक होता है।

"पदे विवृत्तिः पद विवृत्तिः। स्वरयोरसन्धिर्विवृत्तिः। पदमध्यवर्त्तिन्याः विवृत्तेरूपरि यस्स्वरितः, स खलु पादवृत्तसंज्ञो भवति।" (26)। उदाहरण हेतु "प्रउगमुक्थम्" प्रस्तुत किया है। यह विचार अन्य प्रातिशाख्यों से भिन्न है।

तैरोव्यंजन– ऋक् प्रातिशाख्य में कहा गया है कि जब पूर्ववर्ती उदात्त से उत्तरवर्ती अनुदात्त के मध्य में व्यंजन का व्यवधान होने पर 'स्वरित' होता है वह 'तैरोव्यंजन' होता है। भाष्यकार उव्वट ने इसका लक्षण दिया है–

"तिरो न्तर्धानं व्यंजन यस्येति तैरोव्यंजन इति।" (27)।

तैत्तिरीय प्रातिशाख्य में कहा है कि उदात्तपूर्व स्वरित को व्यंजन से व्यवहित होने पर तैरोव्यंजन स्वरित कहते हैं। "उदात्तपूर्वस्तैरोव्यंजनः।" (28)। वाजसनेयि प्रातिशाख्य में इसी प्रकार कहा गया है कि– "स्वरो व्यंजनयुतस्तैरोव्यंजनः। (29)। इनके उदाहरण इडे, रन्ते, हव्यै, काम्ये दिए हैं। चतुरध्यायिका में व्यंजन से व्यवहित स्वरित 'तैरोव्यंजन' संजक होता है (30)।

तैरोविराम– तैरोविराम संज्ञा का प्रयोग ऋ0 प्रातिशाख्य में नहीं किया गया है। सर्वप्रथम इस संज्ञा का प्रयोग वाजसनेयि प्रातिशाख्य में किया गया है। किन्तु वाजसनेयि प्रातिशाख्य में तैरोविराम संज्ञा से जिस स्वरित को लक्षित किया गया है, वही स्वरित ऋक् प्रातिशाख्य में भी लक्षित है– सन्धि को प्राप्त होकर भी एक न होने वाले अक्षरों का जैसा 'स्वर' उपदिष्ट किया गया है वैसा ही अक्षरों का 'स्वर' 'अवग्रह' होने पर भी जानना चाहिए। "यथा संधीयमानानामनेकी भवतां स्वरः। उपदिष्टस्तथा विद्यादक्षराणामवग्रहे।।" (31)। वाजसनेयि प्रातिशाख्य में भी कहा कि उदात्त और अनुदात्त के मध्य में 'अवग्रह' का व्यवधान होने पर भी जब उदात्त के प्रभाव से अनुदात्त स्वरित हो जाता है तो उसे तैरोविराम स्वरित कहा जाता है। "उदवग्रहस्तैरोविरामः।" (32)।

ताथाभाव्य– वाजसनेयि प्रातिशाख्य में कहा गया है कि दो उदात्तों के बीच अनुदात्त हो तो वह 'स्वरित' हो जाता है और उसकी 'ताथाभाव्य' संज्ञा हो जाती है। "उदाद्यन्तौन्यवग्रहस्ताथाभाव्यः।" (33)। 'तनू नप्त्रे इति तनू नप्त्रे' में 'नू' (अनुदात्त) ताथाभाव्य उद्धृत किया है। उल्लेखनीय है कि ताथाभाव्य का यह उदाहरण शुक्ल यजुर्वेद की माध्यन्दिन संहिता का है। इसके अनुसार 'नू' स्वरित न होकर अनुदात्त ही रहता है (जैसा है वैसा ही रहे = ताथाभाव्य) जबकि किसी अन्य शाखा में दो उदात्तों के बीच 'अनुदात्त' को 'स्वरित' हो जाना चाहिए (34)।

प्रातिहत– तैत्तिरीय प्रातिशाख्य में कहा है कि दो भिन्न पदों में पूर्वपद के अन्त में स्थित 'उदात्त' के कारण उत्तरपद के आदि में स्थित 'अनुदात्त' यदि स्वरित हो जाए तो उसे 'प्रातिहत स्वरित' कहते हैं– "अपि चेन्नानापदस्थमुदात्तमथ चेत् साहितेन स्वर्यते स प्रातिहतः। (35)।"

आ–जात्य स्वरित– ऋक् प्रातिशाख्य के उव्वट भाष्य में कहा है कि जाति (स्वभाव) से ही उदात्त और अनुदात्त की संगति के बिना ही जो स्वरित है वह 'जात्य स्वरित' है।

"जात्या स्वभावेनैव उदात्त संगतेर्विना (यः स्वरितो) जायते स जात्यः। (36)।"

ऋक् प्रातिशाख्य के अनुसार एक पद में उदात्तपूर्व स्वरित से अन्य जो 'स्वरित' स्वर हैं उसे जात्य स्वरित कहा है– "अतोऽन्यत्स्वरितं स्वारं जात्यमाचक्षते पदे। (37)।" तैत्तिरीय प्रातिशाख्य ने इसी परिभाषा को 'नित्य स्वरित' के नाम से

उल्लिखित किया है– एक ही पद में स्थित अनुदात्तपूर्व या अपूर्व यकार अथवा वकार से युक्त अक्षर जब स्वरित हो जाता है तो उसे 'नित्य स्वरित' संज्ञक जाना जाता है। "सयकार वकारं त्वक्षरं यत्र स्वर्यते स्थिते पदेऽनुदात्तपूर्वेः पूर्वे वा नित्य इत्येव जानीयात्। (38)।" वाजसनेयि प्रातिशाख्य में जात्य स्वरित का विधान इस प्रकार किया गया है कि एक ही पद में नीच पूर्व (अनुदात्तपूर्व) अथवा अपूर्व यकार अथवा वकार से युक्त स्वरित 'जात्य स्वरित' है। "एक पदे नीचपूर्वः सयवो जात्यः। (39)।" चतुरध्यायिका में यह परिभाषा इस प्रकार कही गई है कि यकार और वकार में अन्त में होने वाले संयुक्त (वर्ण) के बाद में आने वाला अनुदात्त पूर्व अथवा अपूर्व स्वरित 'जात्य स्वरित' है। "अनुदात्त पूर्वात्संयोगाद्यवान्तात्स्वरितं परमपूर्व वा जात्यः। (40)।" इ–सन्धिज स्वरित– सन्धिज स्वरित के तीन भेद हैं–

क्षैप्र– ऋक् प्रातिशाख्य में क्षैप्र स्वरित का विधान इस प्रकार किया है कि 'क्षैप्र' संधियों में 'उदात्त' पूर्व में होने पर और 'अनुदात्त' बाद में होने क्षैप्र स्वरित करना चाहिए।

"इकारयोश्च प्रश्लेषे क्षैप्राभिनिहितेषु च। उदात्तपूर्वरूपेषु शाकल्यस्यैवमाचरेत्। (41)।।" तैत्तिरीय प्रातिशाख्य में कहा है कि उदात्त इकार और उकार का क्रमशः यकार और वकार होने पर जो 'स्वरित' होता है वह क्षैप्र स्वरित होता है। "इवर्णोकारयोर्यवकार भावे क्षैप्र उदात्तयोः। (42)।" वाजसनेयि प्रातिशाख्य में कहा है कि इ तथा उ उदात्तवर्णो के क्रमशः यकार तथा वकार हो जाने पर उसके बाद आने वाले अनुदात्त का स्वरित 'क्षैप्र' संज्ञक होता है– "युवर्णो यवौ क्षैप्रः। (43)।" चतुरध्यायिका में अन्तस्थों की गणना न करते हुए कहा है कि उदात्त स्वर के बाद में स्थित 'अनुदात्त' का 'स्वरित' होने पर 'क्षैप्र' स्वरित होता है। "अन्तस्थापक्ता उदात्तस्यानुदात्ते क्षैप्रः। (44)।"

प्रश्लिष्ट– ऋक् प्रातिशाख्य (3/13) में कहा है कि दो ह्रस्व इकारों की प्रश्लिष्ट संधि होने पर उदात्त पूर्व में हो और अनुदात्त बाद में तो शाकल्य ऋषि के मत से स्वरित करना चाहिए। 'स्रुचीव' इसका उदाहरण प्रस्तुत किया गया है। तैत्तिरीय प्रातिशाख्य में कहा है कि दो ह्रस्व उकारों की 'प्रश्लिष्ट' संधि होने पर जो 'स्वरित' है वह 'प्रश्लिष्ट' स्वरित होता है। "ऊभावे प्राश्लिष्टः"। (45)। उदाहरण हेतु 'सूद्गाता' पद दिया गया है। वाजसनेयि प्रातिशाख्य के अनुसार दोनों ओर ह्रस्व इकार होने पर उनकी परस्पर 'प्रश्लिष्ट' संधि होती है। वहां प्राप्त स्वरित प्रश्लिष्ट स्वरित होता है– "इवर्ण उभयतो ह्रस्वः प्रश्लिष्टः"। (46)। स्रुचीव यहां भी उद्धत किया है। चतुरध्यायिका में कहा गया है कि दो ह्रस्व इकारों की संधि प्रश्लिष्ट स्वरित का निर्माण करती है– "इकारयोः प्रश्लिष्टः"। (47)।

अभिनिहित– ऋक् प्रातिशाख्य में शाकल्य का मत उद्धत करते हुए कहा है कि अभिनिहित सन्धियों में, उदात्त पूर्व में होने पर और अनुदात्त बाद में होने पर, अभिनिहित स्वरित कहना चाहिए (48)। तैत्तिरीय प्रातिशाख्य के अनुसार नाना पदों में स्थित उदात्त के बाद आने वाले अनुदात्त अकार का लोप होने पर प्राप्त स्वरित अभिनिहित स्वरित है– "तस्मादकारलोपे भिनिहितः"। (49)। चतुरध्यायिका के अनुसार पदान्त ए तथा ओ के बाद अ आए वहां प्राप्त स्वरित अभिनिहित है। "एकारौकारौ पदान्तौ परतोऽकारं सोऽभिनिहितः"। (50) प्रातिशाख्यों में प्राप्त स्वरितों का उल्लेख किया गया है। ऋक् प्रातिशाख्य में ताथाभाव्य और प्रातिहत का उल्लेख नहीं किया गया है। यहां जात्य त्वरित के दो भेद अपूर्व स्वरित और नीच पूर्व स्वरित स्वीकार किए गए हैं। प्रातिशाख्यों में पादवृत्त स्वरित को वैवृत स्वरित भी कहा गया है। स्वरित का शाब्दिक अर्थ है 'ध्वनित' या 'उच्चारित'। स्वरित स्वर उदात्त और अनुदात्त के मेल से बनता है। इस मेल के कारण अनुदात्त स्वर उदात्त के समान उच्चारित होता है। उच्च निम्न और मिश्रित रूपों में उच्चारित किये जाने वाले उदात्रादि स्वर भेदों का प्रातिशाख्यों में सूक्ष्म विश्लेषण प्राप्त होतो है। प्रातिशाख्यों में उच्चारणावयवों के वैशिष्ट्य के साथ स्वरों पर

सूक्ष्म वैज्ञानिक चिंतन दृष्टिगोचार होतो है। इस प्रकार शब्दार्थ के सर्वशुद्ध व रक्षित करने में इन ग्रन्थों का महत्व अपरिमित है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. एते स्वराः– ऋक् प्रातिशाख्य (1.3)
2. तत्र स्वराः प्रथमम्। अ इति आ इति आ3 इति इ इति ई इति ई3 इति उ इति ऊ इति ऊ3 इति, ऋ इति ॠ इति ॠ3 इति ऌ इति ऌ इति ऌ3 इति। अथ सन्ध्यक्षराणि। ए इति ए3 इति, ऐ इति ऐ3 इति ओ इति ओ3 इति औ इति औ3 इति। इति स्वराः। वाजसनेयि प्रातिशाख्य– 8/2–6/
3. चतुरध्यायिका 1.4, 13, 32, 55, 93, 98
4. 'अ इति आ इति.....इति स्वराः'– ऋक् तन्त्र– 1,2
5. उदात्तश्चानुदात्तश्च स्वरितश्च त्रयः स्वराः। आयामविश्रम्भाक्षेपैस्त उच्यन्ते।। – ऋक् प्रातिशाख्य (3/1)

6. तैत्तिरीय प्रातिशाख्य– 1,38।
7. वा० प्रा०– 1,108।
8. च० अ०– 1.14।
9. ऋक् तन्त्र– 51
10. अथर्ववेद– 17
11. ऋक् प्रातिशाख्य (उव्वट भाष्य) 3,1
12. तै० प्रा०– 1/39
13. वाजसनेयि प्रा०– 1.109। च अ– 1.15
14. अथर्व प्राति०– 19
15. तै० प्रा० (मा० भा०) 1.39
16. तै० प्रा० (वै० आ०) 1.39
17. ऋ० प्रा० (उ० भा०) 3.1
18. ऋ० प्रा०– 3.3
19. तै० प्रा०– 1.40
20. वा० प्रा०– 1.110
21. चतु० अ०– 1.16
22. ऋ० तं०– (53)
23. ऋ० प्रा० 3.17
24. पदविवृत्यां पादविवृत्तः। तै० प्रा० (20.6)
25. तै० प्रा० (त्रि० र०)– 20.6
26. तै० प्रा० (वै० आ०) 20.6
27. ऋ० प्रा० (उ० भा०) 3.18
28. तै० प्रा० 20.7
29. वा० प्रा० (1.117)
30. व्यंजनव्यवेतस्तैरोव्यंजनः। चतु० अ० (3.62)
31. ऋ० प्रा० (3.24)
32. वा० प्रा० (1.118)
33. वा० प्रा० (1.120)
34. प्रा० में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दः डॉ इन्द्रा (पृ० 173)
35. तै० प्रा० (20.3)
36. ऋ० प्रा० (उ० भा०) 3.8
37. ऋ० प्रा० (3.8)
38. तै० प्रा०– (20.2)
39. वा० प्रा०– (1.111)
40. चतु० आ० (3.57)
41. ऋ० प्रा० (3.13)
42. तै० प्रा० (20.1)
43. वा० प्रा० (1.115)
44. चतु० आ० (3.58)
45. तै० प्रा० (20.5)
46. वा० प्रा० (1.116)

*****